International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2017; Page No. 72-73

स्मृतिग्रंथों में वर्णित अर्थ और राजनीति की अवधारणा

सोनू

Extension lecturer, Department of Hindi, Ch. Bansi Lal Govt. College, Loharu, Bhiwani, Haryana, India

सरांश
अर्थतन्त्र ही शासनतन्त्र के संचालन का आधार है, जिसके बिना राज्य एवम् राजनीति निष्क्रिय व निष्प्राण हो जाता है। महाभारत में भी वर्णित है कि अर्थ–शून्य राजा बलविहीन होता है।[8] इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर प्राचीन भारतीय विचारकों ने राज्य की समृद्धि हेतु आर्थिक सम्पन्नता पर विशेष बल दिया, जिसके सम्बन्ध में वर्णित विचारों से राज्य एवम् राजनीति का आर्थिक पहलू प्रस्फुटित होता है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में राजस्व–व्यवस्था, राजकर–प्रणाली, राजकीय सहायता, शुल्क, अनुदान, ऋण वितरण आदि विषयों पर अनेक प्रकार के विचार मुखरित हुये हैं। इन उपक्रमों की पूर्ति हेतु कोष–संचय का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। यह अर्थ–संग्रह कभी भी राजा की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नहीं था। इसका उद्देश्य जन–कल्याण था। जन–कल्याण एवं राजशक्ति के संरक्षण की अनिवार्यता (आपातकाल) में जन–इच्छा के विपरीत भी अर्थ का संग्रह किया जा सकता था।[1]

मूल शब्द: अर्थतन्त्र, राजस्व–व्यवस्था, राजकर–प्रणाली, राजकीय सहायता।

प्रस्तावना
राज्य व शासन के सुव्यवस्थित संचालन के लिये अर्थ की महत् आवश्यकता है जिसका कोई अन्य विकल्प नहीं है।[1] किसी भी राष्ट्र की राजनीतिक सामाजिक एवम् धार्मिक सुदृढ़ता के लिये अर्थ अपरिहार्य कारण है और अर्थ की सुदृढ़ता के लिये राजनीतिक व सामाजिक सुदृढ़ता का होना आवश्यक है, अतः ''अर्थ राजनीतिक कुशलता पर अवलम्बित है''– यह कहना गलत नहीं होगा । महाभारत में अर्थ के महत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा गया है कि – ''राजा का मूल कोष (अर्थ) एवम् सेना में निहित है, सेना का मूल कोष (अर्थ) है, सेना सम्पूर्ण धर्मों का आधार है और धर्म ही प्रजा का मूल है।[2] अतएव यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि – ''सर्वे गुणाः अर्थमाश्रयन्ति।'' आचार्य कौटिल्य ने भी अर्थ (सम्पत्ति, धन) को राज्य एवम् राजनीति का आधार बताया है। राज्य के सम्पूर्ण कार्य अर्थ पर आधारित हैं, अतः राजा को अर्थ (कोष वृद्धि) के विषय में चिन्तन करना चाहिये।[3] आचार्य बृहस्पति ने भी अर्थ को समस्त कार्यों का मूल एवम् उद्गम स्थल माना है।[4] प्राचीन हिन्दू दार्शनिकों[5] ने तो राज्य के सात अंगों में अर्थ (कोष) को प्रमुख अंग माना है। महर्षि शुक्र ने भी राज्य के सप्त अंगों में कोष को महत्वपूर्ण अंग के रूप में वर्णित किया है।[6] महर्षि ने सेना द्वारा अर्थ (कोष) एवम् अर्थ के द्वारा सेना का संग्रह मानते हुए सेना तथा कोष दोनों की रक्षा से अर्थ तथा राज्य की वृद्धि के साथ शत्रुओं का विनाश भी माना है।[7]

सत्यतः अर्थतन्त्र ही शासनतन्त्र के संचालन का आधार है, जिसके बिना राज्य एवम् राजनीति निष्क्रिय व निष्प्राण हो जाता है। महाभारत में भी वर्णित है कि अर्थ–शून्य राजा बलविहीन होता है।[8] इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर प्राचीन भारतीय विचारकों ने राज्य की समृद्धि हेतु आर्थिक सम्पन्नता पर विशेष बल दिया, जिसके सम्बन्ध में वर्णित विचारों से राज्य एवम् राजनीति का आर्थिक पहलू प्रस्फुटित होता है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में राजस्व–व्यवस्था, राजकर–प्रणाली, राजकीय सहायता, शुल्क, अनुदान, ऋण वितरण आदि विषयों पर अनेक प्रकार के विचार मुखरित हुये हैं। इन उपक्रमों की पूर्ति हेतु कोष–संचय का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। यह अर्थ–संग्रह कभी भी राजा की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नहीं था। इसका उद्देश्य जन–कल्याण था। जन–कल्याण एवं राजशक्ति के संरक्षण की अनिवार्यता (आपातकाल) में जन–इच्छा के विपरीत भी अर्थ का संग्रह किया जा सकता था।[1] 'कर' राजा का अधिकार नहीं, प्रजा संरक्षण का प्रतिफल है। यदि संरक्षण नहीं तो कर नहीं अथवा संरक्षण में ही कर का सिद्धान्त मान्य रहा है।[2]

आचार्य शुक्र ने कोष (अर्थ) के महत्व एवम् संग्रह की जाने वाली वस्तुओं के विवेचन के साथ ही साथ कोष संग्रह एवम् अर्जन के उद्देश्यों को भी विवेचित किया है। आचार्य शुक्र ने कोष संग्रह के मुख्य रूप से निम्न उद्देश्य माने हैं–

1. सेना रखने के लिये, 2. प्रजा संरक्षण के लिये एवम्, 3. यज्ञादि कार्य करने के लिये।[3]

आचार्य का विश्वास है कि उक्त उद्देश्यों के निमित्त अर्थ संग्रह करने वाला राजा इहलोक और परलोक दोनों में सुख भोगने वाला होता है,[4] किन्तु आचार्य ने भोग–विलास एवम् अपने स्त्री पुत्रादि के उद्देश्य से कोष–संचय का निषेध ही नहीं किया है अपितु उसे अतुलनीय दुःख का कारण भी माना है।[5] इस प्रकार स्पष्ट है कि शुक्रनीति की राज्य व्यवस्था में राजा द्वारा धनार्जन एवम् उपभोग व्यक्तिगत लाभ के लिये नहीं किया जायेगा।[6] वस्तुतः शुक्र राजकोष के संगृहीत धन को सार्वजनिक धन मानने के पक्ष में थे।

उपर्युक्त महत्वपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आचार्य शुक्र ने राजा की नीतियुक्त यत्न द्वारा कोषवृद्धि का निर्देश दिया है,[1] किन्तु आचार्य ने सद्मार्ग एवम् उचित साधनों से ही वृद्धि का आग्रह करते हुये असद् माध्यमों से कोषवृद्धि करने का निषेध किया है।[2] स्पष्टतः आचार्य शुक्र सद्उद्देश्य एवम् सद्मार्ग से ही कोषवृद्धि के पक्ष में थे। प्राचीन हिन्दू दार्शनिकों[3] की भांति महर्षि शुक्र ने भी विभिन्न साधनों का वर्णन किया है जिनमें अर्थदण्ड, उपायन (भेंट में प्राप्त), भाटक (भाड़े के रूप में प्राप्त धन), विजय प्राप्ति द्वारा, दुष्टों के धनहरण द्वारा, व्यापारियों का धन सुरक्षित रखकर तथा कर–व्यवस्था इत्यादि प्रमुख हैं।[4] शुक्रनीति के अध्ययन के उपरान्त स्पष्ट हो जाता है कि इसकी राज्य–व्यवस्था में राज्य की आय का प्रमुख साधन प्रजा द्वारा दिया जाने वाला कर ही है। आचार्य शुक्र ने कर के अतिरिक्त प्राचीन भारतीय राजनीतिज्ञों की भाँति[5] अर्थदण्ड के रूप में राज्य को प्राप्त होने वाले धन को भी कोषवृद्धि का स्रोत माना है। परन्तु शुक्रनीति की दण्ड–व्यवस्था के उद्देश्यों

से ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य शुक्र को दण्ड देने के पीछे कोषवृद्धि का उद्देश्य नहीं था[6] फिर भी आचार्य ने दण्ड को प्रत्यक्ष रूप से कोषवृद्धि के साधनों में अवश्य माना है।[7] राजकोष की वृद्धि का एक अन्य साधन 'उपायन' के रूप में प्राप्त होता है, जिसके कार्य से ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः राजा को भेंट के रूप में विशेष समयों जैसे–अभिषेक, पुत्रोत्पत्ति, यज्ञकाल तथा ऐसे ही अन्य उत्सवों पर धन प्राप्ति होती होगी।[8] वास्तव में शुक्रनीति में केवल इतना ही वर्णन प्राप्त होता है कि राज्य को उपायन के द्वारा भी धन प्राप्त होगा। जिसका संग्रह राजकोष में किया जायेगा।[9] आचार्य शुक्र ने राजकोष की वृद्धि के साधनों में प्रयुक्त 'भाटक' शब्द को भी स्पष्ट नहीं किया है, संभवतः भाटक से उनका तात्पर्य भाड़े के रूप में प्राप्त धन के उस अंश से रहा होगा जो राजकोष में कर के रूप में भेजा जाता था।[10] यहाँ यह स्मरणीय है कि अर्थशास्त्र के आधार पर भी यह कहा जाता है कि प्राचीन भारत में 'भाटक' भार ढोने वाले लोगों पर कर रूप में लगाकर ग्रहण किया जाता था।[1]

प्राचीन हिन्दू राजनीतिक व्यवस्था में युद्ध की परम्परा पायी जाती है और उसमें विजेता राजा को अपार सम्पत्ति एवम् धन की उपलब्धि होती थी। इस प्रकार प्राप्त होने वाले धन व सम्पत्ति को कोषवृद्धि व आय के साधनों में स्वीकार किया गया है। इसी परम्परा के अनुरूप आचार्य शुक्र ने भी अधर्मशील आचरणों से युक्त राजा के धन को बुरा नहीं माना। इसमें छल बल और डाकुओं की वृद्धि आदि का प्रयोग करके भी धर्मशील राजा द्वारा उसका धनहरण कर लेना तक सम्मिलित है।[2] इससे स्पष्ट है कि शुक्रनीति में राज्य की कोष–वृद्धि का स्रोत, विजय में प्राप्त धन भी दृष्टिगोचर होता है। आचार्य शुक्र ने दुष्टों के धनहरण[3] एवम् व्यापारियों का आधा धन सुरक्षित रखने को भी कोषवृद्धि के साधन के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार आचार्य शुक्र ने अन्याय से धन संग्रह करके कुमार्ग में व्यय करने वाले अपात्र व्यक्ति के धनहरण में किसी प्रकार का दोष नहीं माना है। इसके साथ ही व्यापारियों के मूल धन में से आधा धन सुरक्षित करके कोष में जमा करने के साथ ही शेष आधे धन से व्यवसाय करने का आग्रह किया है। उनका विश्वास था कि इस प्रकार व्यवसायी अपने मूल धन के आधे धन से व्यापार करेंगे।[4] जिनमें उनका उद्देश्य सस्ते दामों पर वस्तुओं का संचय करके मँहगाई में बेचने से रहा है।[5]

अतएव स्पष्टतः आचार्य शुक्र ने विवेचित किया है कि राजा केवल प्रजा–रक्षण के अधिकार से ही कर–ग्रहण करने का अधिकारी होता है। भूख के कारण राजा काष्ठवत् सूख जाय, परन्तु उसको किसी कार्य का बहाना बनाकर प्रजा से धन की याचना नहीं करनी चाहिये। निजी उपयोग के लिये राजा को कर–ग्रहण करने का अधिकार नहीं है। प्रजा के उत्पीड़न द्वारा कर–ग्रहण करने वाले राजा का राज्य एक–न–एक दिन अवश्य शत्रु के वश में चला जाता है।[6] कर–ग्रहण में राजा को कोयला नहीं मधु–सिद्धान्त का प्रयोग करना चाहिये।[7] परन्तु आचार्य शुक्र ने आपात् काल में कर–वर्द्धन का निर्देश दिया है। वस्तुतः राज्य के अभ्युदय, राजकीय कर्त्तव्यों के परिपालन, लोक कल्याणकारी व्यवस्था के क्रियान्वयन तथा राजकीय तन्त्र के संचालन आदि हेतु प्राचीन भारत में राज्य की अर्थ–व्यवस्था को पर्याप्त महत्व दिया गया। यह इसी बात से स्पष्ट है कि अर्थ (कोष) को राज्य व राजनीति का एक विशेष अंग मान लिया गया।

सन्दर्भः

1. ए0एस0 अल्टेकर, –''प्राचीन भारतीय शासन पद्धति'' पृष्ठ–198
2. ''राज्ञः कोषबलं मूलं, कोषमूलं पुनर्बलम्। तन्मूलं सर्वधर्माणां, धर्ममूलाः पुनः प्रजाः ।। महा0 शान्तिपर्व – 130, 35
3. कौटिलीय अर्थशास्त्र–5/2/1,
4. राघवेन्द्र बाजपेयी–''बृहस्पत्य राज्य व्यवस्था।'' पृष्ठ 122
5. महाभारत, शान्तिपर्व–69, 64–65, मनुस्मृति–9/294,
6. शुक्र0–1/61,
7. शुक्र0–4/2/14–15
8. ''राज्ञः कोषक्षयादेव जायते बलसंक्षयः।'' महा0 शान्ति – 130/12
9. शुक्र0–1/30–36
10. मनु0–9/254,
    मनु0–8/304–308
    ''परिपालको हि राजां सर्वेषां धर्माणां षष्ठांशमाप्नोति।'' नीतिवाक्यमृतम्–पृष्ठ–109
11. शुक्र0–4/02/02
12. ''बलप्रजारक्षणार्थं यज्ञार्थं कोषसंग्रहः। परत्रेह च सुखदो नृपस्यान्यश्च दुःखदः।।'' शुक्र0–4/02/03
13. शुक्र0–4/02/04,
14. ''प्रभाकर दीक्षित'–बाल्मीकि रामायण में राजनीतिक विचार'' पृष्ठ–356
15. शुक्र0–4/02/02,
16. शुक्र0–4/02/5–6
17. 'मनुस्मृति'–8/307, रामायण, अयोध्याकाण्ड–100, 56, कौटिलीय अर्थशास्त्र–5, 2 एवम् अन्य
18. शुक्र0–2/335,
19. 'मनुस्मृति'–8/125, रामायण, अयोध्याकाण्ड–100, 56,
20. आचार्य शुक्र अर्थदण्ड मात्र कोषवृद्धि के उद्देश्य से देने के पक्ष में नहीं थे, वस्तुतः वह तो अपराधी में सुधार के उद्देश्य से ही अर्थदण्ड देने के पक्ष में थे।
21. महाभारत, शान्तिपर्व–71, 10,
22. 'श्यामलाल पाण्डेय'– 'शुक्र की राजनीति' (प्रेम पब्लिशर लखनऊ) पृष्ठ –193
23. शुक्र0–2/335,
24. 'श्यामलाल पाण्डेय'– 'शुक्र की राजनीति' पृष्ठ –194,
25. ''नौका भाटकं षडभागं दधुः।'' कौटिलीय अर्थ0–2, 28, 3,
26. शुक्र0–4/2/7
27. कौटिलीय अर्थशास्त्र–5, 2, 1
28. शुक्र0–4/2/23
29. शुक्र0–4/2/24
30. शुक्र0–4/8
31. शुक्र0–4/110 एवम् 2/173